Chap-9

नवम अध्याय : उपसंहार

नवम अध्याय

उ प सं हा र

हिन्दी साहित्य में लखपतिसिंह का स्थान :

हिन्दी साहित्य में महाराव लखपतिसिंह का स्थान निर्दिष्ट करने के लिये उन के समग्र कृतित्व और अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियों का मूल्यांकन, निम्नलिखित दृष्टियों से किया जा सकता है :

(एक) : लखपतिसिंह के समकालीन हिन्दी-काव्य अर्थात् रीतिकाव्य की दृष्टि से,

(दो) : गुजरात की व्रजभाषा-काव्य-परम्परा की दृष्टि से, और

(तीन) : साहित्य के प्रचार और प्रसार की दृष्टि से ।

(एक)

रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ और लखपतिसिंह

पूर्ववर्ती विवेचन से यह स्पष्ट है कि महाराव लखपतिसिंह के समकालीन हिन्दी-काव्य अर्थात् रीतिकाव्य की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ — शृंगारिकता और आचार्यत्व उन के कृतित्व की भी प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं । रीतिकाल में शृंगारिकता और आचार्यत्व दोनों परस्पराश्रित काव्य-प्रवृत्तियाँ थीं । इस पर भी लखपतिसिंह का आचार्यत्व तो केवल नायिका-भेद तक ही सीमित होने के कारण वह उन की शृंगारिकता का ही अविभाज्य अंग है । रीतिकाल में शृंगार के अतिरिक्त प्रशस्ति-काव्य, नीति, वीर और भक्ति-विषयक काव्य भी लिखे जाते थे परंतु इन में से शृंगार की ही प्रधानता थी । स्वयं आश्रयदाता होने कारण लखपतिसिंह को प्रशस्ति-काव्य

लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ी । प्रकृति से शृंगारी होने के कारण नीति और वीर-काव्य भी उन्हों ने नहीं लिखे । हाँ, भक्ति और वैराग्य-भावना विषयक काव्य " लखपति-भक्ति-विलास " उन्हों ने अवश्य लिखा, किंतु यह उन की घोर शृंगारिकता की प्रतिक्रिया-स्वरूप लिखा गया है, शुद्ध भक्ति-भाव से प्रेरित हो कर नहीं । उन के द्वारा लिखे गये "सदाशिव-ब्याह " से भी यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि उन्हों ने तुलसीदास, पद्माकर आदि कवियों की तरह शिवविषयक काव्य भक्तिभाव से प्रेरित हो कर नहीं बल्कि शृंगारिकता से प्रेरित हो कर लिखा है । इस प्रकार शृंगारिकता लखपतिसिंह के साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है जो तत्कालीन हिन्दी-रीति-साहित्य की सर्वसामान्य काव्य-प्रवृत्ति के अनुरूप ही है ।

शृंगारिकता :

लखपतिसिंह के शृंगार-काव्य में शृंगार के परंपरागत और उन्मुक्त दोनों स्वरूप दृष्टिगत किये जाते हैं जो हिन्दी के रीतिकालीन कवियों की तद्विषयक प्रवृत्ति से तुलनीय है । नायिकाभेद विषयक ग्रंथ " रसतरंग " में उन्हों ने परंपरागत शृंगार का शास्त्रानुरूप वर्णन किया है परंतु उन के " सुरतरंगिनी " जैसे संगीत-शास्त्र विषयक ग्रंथ में राग-रागिनियों के सौन्दर्य-वर्णनों एवं उन की शृंगार-चेष्टाओं में उन्मुक्त शृंगार का सरस काव्य मिलता है । इतना ही नहीं गुजरात के लोकसाहित्य पर आधारित " सदाशिव-ब्याह " खंडकाव्य में समसामयिक जीवन की शृंगारिक प्रवृत्ति की गहरी छाप है । इस प्रकार लखपतिसिंह की शृंगारिक प्रवृत्ति रीतिकालीन शास्त्रीय विषयों तक ही सीमित न रह कर अपनी उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिये संगीतशास्त्र और लोकसाहित्य के विविध व्यापक क्षेत्रों में भी परिव्याप्त होती दिखाई पड़ती है ।

काव्य-विषय के अतिरिक्त काव्य-रूपों की दृष्टि से भी लखपतिसिंह ने अपनी व्यापक काव्य-चेतना का परिचय दिया है । रीतिकाल

में मुक्तक-काव्य की प्रधानता रही । परंतु लखपतिसिंह ने मुक्तक के अतिरिक्त प्रबंधकाव्य (खंडकाव्य) को भी अपनाया । इस कारण उन की शृंगारानुभूति की व्यापक अभिव्यक्ति हो पाई है । पौराणिक और गुजरात के लोकसाहित्य पर आश्रित कथा के माध्यम से उन्हों ने शृंगार-काव्य को व्यापक क्षेत्र प्रदान किया । रीतिकाव्य में जो प्रबंधकाव्य लिखे भी गये हैं उन में से शृंगार भावना से प्रेरित प्रबंध काव्य बहुत कम हैं ।

महाराव लखपतिसिंह के शृंगार-काव्य के विवेचन के अंतर्गत हम यह दृष्टिगत कर चुके हैं कि शृंगार के संयोग और वियोग दोनों स्वरूपों का उन्हों ने यथाप्रसंग वर्णन किया है । इन में से संयोग-शृंगार का बड़ा ही सरस एवं ललित चित्रण वे कर पाये हैं जो उन के व्यक्तिगत जीवन-दृष्टिकोण तथा समकालीन काव्य-दृष्टि के सर्वथा अनुरूप ही है । लखपति-सिंह द्वारा वर्णित शृंगार-काव्य के भाव एवं कला-पक्ष के सम्यक् मूल्यांकन के लिये उन की सौन्दर्यानुभूति तथा उस की कलात्मक अभिव्यक्ति रीति-कालीन प्रसिद्ध कवि देव और बिहारी से तुलना की जा सकती है । प्रसिद्ध कवि देव जैसी गहरी रसार्द्रता और सूक्ष्म भावाभिव्यंजकता प्रस्तुत विवेच्य कवि में सर्वत्र तो नहीं पाई जाती किंतु कुछ उदाहरणों में तो उनकी भावानुभूति और उस की कलात्मक अभिव्यक्ति कवि देव से भी अधिक गुणसम्पन्न प्रतीत होती है जिस का सोदाहरण विवेचन यथाप्रसंग किया जा चुका है । कविवर बिहारी जैसी कल्पना-शक्ति, चंचल और कोमल सौन्दर्य की कलात्मक अभिव्यक्ति के भी कुछ अच्छे उदाहरण लखपतिसिंह के साहित्य में मिलते हैं जो कि उन की संख्या अल्प ही है । रीतिकाल के इन दो प्रसिद्ध कवियों की अपेक्षा लखपतिसिंह ने अपनी शृंगाराभिव्यक्ति के लिये अधिक व्यापक क्षेत्र चुना है । मुक्तक के अतिरिक्त प्रबंधकाव्यगत पात्र एवं परिस्थितियों का उन्मुक्त क्षेत्र उन की अभिव्यक्ति की व्यापकता में करणीभूत रहा है । नायिका-भेद, पौराणिक कथा, लोकसाहित्य

और संगीत-शास्त्र के विविध क्षेत्रों में लखपतिसिंह की व्यापक और उन्मुक्त सौन्दर्य-दृष्टि पहुँची है । ऐसा होते हुए भी देव और बिहारी जैसे महा-कवियों के समान शृंगार के सभी पक्षों की सूक्ष्म और कलात्मक अभिव्यंजना उन के काव्य में नहीं हो पाई है । भाषा और शब्द-शक्तियों के प्रयोग में तो महाराव लखपतिसिंह देव और बिहारी ही नहीं अपितु रीतिकाल के अन्य कलाकुशल कवियों की तुलना में निर्बल दिखाई पड़ते हैं । शब्दों को खराद खराद कर भाषा की पूर्णशक्ति के साथ प्रस्तुत करने की कला में लखपतिसिंह बहुत पीछे हैं । हिन्दी-क्षेत्र के कलात्मक वातावरण से दूर रहने तथा एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र के कवि होने के कारण ही संभवतः काव्यशिल्प में कवि का उतना सामर्थ्य नहीं प्रस्तुत हुआ । यह तथ्य रीतिकाल के कवियों में उन के स्थाननिर्धारण में सहायक सिद्ध होता है ।

अतः इस दृष्टिकोण से महाराव लखपतिसिंह के साहित्य की शृंगारिकता का समग्रतया मूल्यांकन करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं :

(एक) उन के शृंगार-काव्य में जीवन और साहित्य का समन्वय दिखाई पड़ता है । उन की जीवनी और कृतित्व के अध्ययन से यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है । उन्हों ने शृंगारिकता की प्रवृत्ति को परंपरा के अनुरोध के वश हो कर नहीं वरन् अपनी व्यक्तिगत रसवृत्ति से वशीभूत हो कर अपनाया था ।

(दो) शृंगार-काव्य के परंपरागत और उन्मुक्त दोनों स्वरूपों को लखपतिसिंह के कृतित्व में स्थान मिला है ।

(तीन) लखपतिसिंह के शृंगार-काव्य में घनीभूत एकोन्मुखी प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं हुई है । उस के मूल में चारों ओर फैली हुई अनेकोन्मुखी रसिकता और विलासिता ही है । उन की

शृंगारिकता में प्रेमजन्य गंभीरता के बदले विलासमूलक तरलता है ।

(चार) व्यक्तिगत अनुभवों एवं अभिरुचि पर आश्रित होते हुए भी उन की शृंगारिकता की अभिव्यक्ति काव्यगत पात्र एवं परिस्थितियों के माध्यम से ही हो पाई है । इस दृष्टि से उन का शृंगार-काव्य व्यक्तिनिष्ठ आत्मलक्षी काव्य न हो कर वस्तुपरक परलक्षी काव्य है ।

(पाँच) समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में हम लखपतिसिंह को रीतिकाल के प्रथम श्रेणी के कवियों के साथ तो नहीं रख सकते किंतु इन्हें सामान्य कोटि का कवि भी नहीं कहा जा सकता । कवि-कर्म मात्र इनके जीवन का प्रधान प्रतिपाद्य नहीं था । राजकीय और आर्थिक समृद्धि के दायित्व-निर्वाह के बीच जब कभी इन्हें समय मिलता होगा तब काव्य का सर्जन हो पाता था । संभव है कि यदि कवि पूरी तरह से इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा और साधना का योग दे पाता तो उनके कृतित्व का पक्ष इस से भी अधिक व्यापक और उत्कृष्टतर रहा होता ।

आचार्यत्व :
o—o—o—o—o

रीतिकाल में तीन तरह के आचार्य हैं — सर्वांग या विविधांग निरूपक आचार्य, नवरस निरूपक आचार्य और शृंगार एवं नायक-नायिका-भेद निरूपक आचार्य । इस दृष्टि से महाराव लखपतिसिंह तीसरे वर्ग के अंतर्गत आते हैं । इन को नायिका-भेद विषयक एक मात्र रचना " रसतरंग " को रीतिशास्त्र की कोटि में रखा जा सकता है । लखपतिसिंह

के आचार्यत्व का क्षेत्र अत्यंत सीमित है ।

हिन्दी के शृंगार एवं नायक-नायिका-भेद निरूपक आचार्यों में प्रमुख रूप में कृपाराम (हिततरंगिनी), सुन्दरदास (सुंदर शृंगार), सूरदास (साहित्यलहरी), नन्ददास (रसमंजरी), रहीम (बरवै नायिकाभेद), चिन्तामणि (शृंगारमंजरी), मतिराम (रसराज), देव (सुखसागर तरंग और रसविलास), आचार्य भिखारीदास (शृंगार निर्णय), आदि कवि आते हैं । महाराव लखपतिसिंह ने नायिका-भेद विषयक ग्रंथों की उपर्युक्त परंपरा में से सुन्दरदास रचित " सुंदर शृंगार" के अनुरूप अपने ग्रंथ " रस तरंग " की रचना की है । सुन्दरदास की तरह उन्हों ने भी शृंगार के सम्पूर्णतया शास्त्रीय निरूपण के स्थान पर केवल नायक-नायिका-भेद पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है । नवरसों में शृंगार को श्रेष्ठ मान कर और शृंगार के आलम्बन-विभावों में नायिका को अधिक रुचिकर मानते हुए उसी के भेदोपभेदों का विस्तृत निरूपण इनके द्वारा किया गया है । " रसतरंग " के विषय-निरूपण का क्रम इस प्रकार है : सर्वप्रथम नायिका-भेद पश्चात् नायक-भेद और तत्पश्चात् शृंगार रस का शास्त्रीय उल्लेख किया गया है । यह विवेचन-क्रम अन्य नायिका-भेद विषयक रीति-शास्त्रों की परंपरा से मिलता है । परंतु नायक-नायिका शृंगार रस के आलम्बन होने से उचित विवेचन-क्रम तो यह होना चाहिये था कि सर्वप्रथम शृंगार-रस का शास्त्रीय विवेचन करने के पश्चात् ही उन के आलम्बन विभाव के अंतर्गत नायक-नायिका-भेद का निरूपण किया जाता । यह उल्लेखनीय है कि " सुन्दर शृंगार " आदि इस परंपरा के रीति-ग्रंथों में यही क्रम विपर्यय पाया जाता है । इस दृष्टि से लखपतिसिंह का विवेचन-क्रम रीतिशास्त्रों की परंपरा से भिन्न नहीं है । समाधान में केवल यही कहा जा सकता है कि कवि का उद्देश्य नायक-नायिका-भेद ही लिखना था । अतः शेष को आनुषंगिक विषय समझ कर उन की संक्षिप्त चर्चा मात्र करना उस ने उचित समझा होगा ।

मौलिकता की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट है कि महाराव लखपतिसिंह ने नायिका-भेद-निरूपण में कोई नई मौलिक उद्भावना नहीं की है । शास्त्रगत न्यूनता और भ्रम को दूर करने का भी कोई प्रयास नहीं किया गया है । परंतु विषय-सम्पादन और स्पष्टीकरण की दृष्टि से " रसतरंग" का अपना निजी महत्त्व है । लक्षणों के उपरांत लक्ष्य अर्थात् उदाहरणों में उपयुक्तता एवं सरसता के गुण विद्यमान हैं । पूर्ववर्ती विवेचन से यह स्पष्ट है कि कहीं कहीं " रसतरंग " का कवि अपने आधारग्रंथ से अधिक सटीक एवं सजीव उदाहरणों को लिख सका है । शास्त्रकार की अपेक्षा कवि की दृष्टि से " रसतरंग " में लखपतिसिंह अधिक सफल सिद्ध हुए हैं जिसे हम यथास्थान लक्ष्य भी कर चुके हैं ।

(दो)

गुजरात की व्रजभाषा-काव्य-परम्परा और लखपतिसिंह

गुजरात की व्रजभाषा-काव्य-परंपरा के अंतर्गत महाराव लखपतिसिंह का स्थान निर्धारित करने के लिये गुजरात की व्रजभाषा-काव्य की विभिन्न परंपराओं को देख लेना आवश्यक है । प्रमुखतया गुजरात में निम्नलिखित व्रजभाषा-काव्य-परंपराएँ मिलती हैं :

(१) धार्मिक काव्य-परंपरा जिस के अंतर्गत जैन और जैनेतर कवियों की रचनाएँ आती हैं । जैनेतर रचनाओं से हमारा तात्पर्य निर्गुण संत, सूफ़ी तथा वैष्णव मतों की रचनाओं से है ।

(२) नीतिपरक काव्य-परंपरा ।

(३) प्रशस्ति-काव्य-परंपरा ।

(४) रीतिशास्त्रीय काव्य-परंपरा ।

(५) शृंगार-काव्य-परंपरा ।

गुजरात में मिलनेवाली उपर्युक्त व्रजभाषा-काव्य-परंपराएँ मुक्तक एवं प्रबंध दोनों रूपों में मिलती हैं, परंतु उन में मुक्तकों की प्रधानता है । महाराव लखपतिसिंह का कृतित्व उपर्युक्त परंपराओं में से रीति-शास्त्रीय एवं शृंगार-काव्य की परंपरा में आता है । काव्यरूप की दृष्टि से उन्हों ने मुक्तक और प्रबंध (खंडकाव्य) दोनों प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं ।

गुजरात की रीतिशास्त्रीय काव्य-परंपरा की दृष्टि से महाराव लखपतिसिंह के कृतित्व की तुलना उनके समकालीन आचार्य कवियों में कनक्कुशल और कुँवरकुशल तथा आधुनिक युग में से आचार्य गोविंद गिल्लाभाई से की जा सकती है । परंतु उन में से कनक्कुशल की रचनाएँ व्रजभाषा संबंधी शब्दकोष और कुछ प्रसिद्ध शास्त्रीय ग्रंथों की टीकाओं के रूप में हैं । आचार्य गोविंद गिल्लाभाई आधुनिक युग के हैं । अतः महाराव लखपतिसिंह के शास्त्रीय कृतित्व की तुलना उन के समकालीन और आश्रित आचार्य कुँवर कुशल से की जा सकती है । वे रीतिकाल के सर्वांग निरूपक आचार्यों में आते हैं । उन का शास्त्रीय ग्रंथ " कवि रहस्य " संस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य मम्मट के " काव्य प्रकाश " के अनुकरण पर लिखा गया है । इस में काव्य के विविध अंगों का सम्यक् निरूपण अत्यंत ही सुबोध शैली में किया गया है जिस की ओर अभी तक हिन्दी के विद्वानों की दृष्टि नहीं गई है । इस दृष्टि से लखपतिसिंह के योगदान का महत्त्व कुँवर कुशल के पश्चात् ही माना जा सकता है । व्यापक काव्य-दृष्टि, शास्त्रीय विवेचन और सूक्ष्म निरूपण आदि की दृष्टियों से वे लखपतिसिंह से श्रेष्ठतर ही हैं ।

गुजरात की शृंगार-काव्य परंपरा की दृष्टि से महाराव लखपतिसिंह की रचनाओं में मुक्तक और प्रबंध दोनों हैं । उनके शृंगारी मुक्तकों के साथ गुजरात के प्रसिद्ध कविवर दयाराम की रचनाओं की तुलना

की जा सकती है । दयाराम की दो रचनाएँ " दयाराम सत सई " और " रसिक रंजन " शृंगारी मुक्तक रचनाएँ हैं । दयाराम के शृंगार काव्य की तुलना में लखपतिसिंह का काव्य अधिक शृंगारी एवं रीतिकाव्य के स्वरूप के निकट का है । भाषा की दृष्टि से भी लखपतिसिंह की व्रजभाषा अधिक परिमार्जित और शुद्ध है ।

महाराजा मेहरामणसिंह का " प्रवीण सागर " गुजरात का प्रसिद्ध रीति-ग्रंथ है । यह एक बृहद् प्रबंध काव्य है । वह अनेक विषयों की जानकारी का कोष भी है । परंतु महाराव लखपतिसिंह के प्रबंधकाव्यों से उसकी तुलना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुसंगठन और प्रबंधशिल्प की दृष्टि से लखपतिसिंह के प्रबंधकाव्य " प्रवीण सागर " से अधिक सफल हैं ।

निष्कर्ष रूप में गुजरात की व्रजभाषा-काव्य-परंपरा के अंतर्गत महाराव लखपतिसिंह के कृतित्व के संबंध में यह कहा जा सकता है कि उन का शास्त्रीय काव्य दूसरी कोटि का अर्थात् मध्यम कोटि का है जब शृंगार-काव्य उत्कृष्ट कोटि का है ।

(तीन)

साहित्य के प्रसार और प्रचार की दृष्टि से

गुजरात में व्रजभाषा और उस के काव्य की व्यवस्थित परंपरा चलाने का श्रेय महाराव लखपतिसिंह को ही दिया जा सकता है । उन के द्वारा प्रस्थापित की गई भुज की " व्रजभाषा काव्यशाला " ने लगभग दो सौ वर्षों के दीर्घकाल तक गुजरात की व्रजभाषा-काव्य-परंपरा को सुदृढ़ और शृंखलाबद्ध किया । इसके द्वारा महाराव लखपतिसिंह ने हिन्दी प्रदेश की मूल्यवान् काव्यशास्त्रीय अध्ययन-सामग्री को गुजरात के अहिंदी-भाषी कवि-विद्यार्थियों के अध्ययन के अंतर्गत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया ।

रीतिकाल के सुप्रसिद्ध आचार्य कवियों में केशवदास, चिंताभणि, सुंदरदास, महाराज जसवंतसिंह आदि के काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ इस काव्य शाला में पढ़ाये जाते थे । इतना ही नहीं सेवक महासिंह का " भाषाछंद शृंगार " जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भी इस काव्यशाला के पाठ्यक्रम में था जिस का कि परिचय हिन्दी-प्रदेश को भी नहीं था । लक्षण-ग्रंथों के अतिरिक्त लक्ष्य-ग्रंथों के रूप में चन्द बरदाई, बिहारी, वृंद, केशवदास आदि सुप्रसिद्ध कवियों के काव्यग्रंथों का भी अध्ययन यहाँ कराया जाता था । इस प्रकार महाराव लखपतिसिंह द्वारा किया गया व्रजभाषा-काव्य के प्रसार और प्रचार का यह कार्य निश्चित ही ऐतिहासिक महत्त्व का है ।

महाराव लखपतिसिंह एक अच्छे काव्य-मर्मज्ञ, उदारचित्त और सद्भावनाशील आश्रयदाता थे । उन्हों ने अपने दरबार में उच्चकोटि के आचार्य और कवियों को प्रश्रय दिया जिन में आचार्य कुँअरकुशल और कनक-कुशल के नाम महत्त्वपूर्ण हैं । लखपतिसिंह की काव्य-मर्मज्ञता के कारण उन के दरबार के आश्रित कवियों की गुणवत्ता का न मात्र उचित परीक्षण और मूल्यांकन ही हुआ बल्कि उन को उच्च कोटि के काव्य-निर्माण की प्रेरणा भी उन से मिलती रही । इसी कारण व्रजभाषा की काव्यशाला के कवियों का कृतित्व गुजरात के हिन्दी-साहित्य के अध्ययन की उत्तम सामग्री बन सकता है ।

साहित्य के प्रसार और प्रचार की दृष्टि से महाराव लखपतिसिंह के कार्यों को गुजरात के हिन्दी साहित्य की परंपरा के क्षेत्र में युगीन महत्व के रूप में निश्चय ही स्वीकार किया जा सकता है । महाराव लखपतिसिंह के आश्रय एवं प्रेरणा से निर्मित हिन्दी साहित्य तथा कच्छ की व्रजभाषा-काव्य की परंपरा का गंभीर एवं विस्तृत अध्ययन एक स्वतंत्र शोध का विषय है । लेखक को विश्वास है कि इस से हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन और अनुशीलन की दृष्टि से अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आ सकेंगे ।

निष्कर्ष :
०००.०००

हिन्दी साहित्य में महाराव लखपतिसिंह का स्थान रीतिकालीन शृंगारी कवियों में आता है । रीतिकाल की आचार्यत्व और शृंगारिकता की दोनों काव्य-प्रवृत्तियों को उन्हों ने अपनाया किन्तु कुल मिलाकर वे शृंगारी कवि के रूप में ही सफल सिद्ध हुए आचार्य के रूप में नहीं । रीतिकाल के शृंगारी कवियों में महाराव लखपतिसिंह का कृतित्व द्वितीय कोटि का गिना जायेगा । गुजरात की व्रजभाषा-काव्य-परम्परा में भी उन का योगदान सभी दृष्टिकोणों से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । उन्हों ने गुजरात में रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियों को स्थिरता प्रदान की । कवि-शिक्षा और कविकर्म-निर्वाह दोनों ओर उन की दृष्टि थी । कवि शिक्षा के लिये उन्हों ने स्वयं लिखा और अधिकांश आचार्यों को भी लिखने की प्रेरणा दी । अपने कृतित्व के अतिरिक्त उच्च कोटि के कवि-आचार्यों को आश्रय प्रदान करके तथा काव्यशिक्षा के लिये "व्रजभाषा काव्यशाला " की स्थापना करके उन्हों ने गुजरात में उच्च कोटि के हिन्दी-साहित्य के प्रसार एवं प्रचार का अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । इस काव्यशाला में अन्य प्रान्तों से भी कवि-विद्यार्थी एवं आचार्य आते थे । इस प्रकार भुज अपने समय का एक सुप्रसिद्ध विद्याकेन्द्र था ।

अतः समग्रतया विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्रजभाषा-काव्य-परंपरा को समृद्ध करने में महाराव लखपतिसिंह का योगदान सभी दृष्टिकोणों से ऐतिहासिक महत्त्व रखता है । उत्कृष्ट साहित्य के निर्माण में अनेक लोगों को नियोजित करने और सुविधा के साधन उपलब्ध कराने का तो उन का कार्य मध्यकालीन साहित्य के इतिहास में अपूर्व और अनुपम है । लेखक का नम्र शब्दों में विश्वास है कि जब कभी हिन्दी साहित्य के इतिहास पर पुनर्विचार होगा तब उस में भुज

की " ब्रजभाषा, काव्यशाला " के योगदान तथा भुज-दरबार के संरक्षण में रचित साहित्य को निश्चय ही स्थान देना होगा और तभी गुजरात के इस साहित्यिक गौरव के संस्थापक और पुरस्कर्ता महाराव लखपतिसिंह के साहित्यिक कृतित्व और व्यक्तित्व का समुचित मूल्यांकन हिन्दी-जगत को सुविदित होगा ।

ooo